

कोसी बाढ़: उत्तर बिहार में आपदा और जीवटता का चक्र

यह लेख सबसे पहले अंग्रेजी में *Rahul Yaduka*, 'Kosi Floods: A Cycle of Disaster and Resilience in North Bihar' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ था जो इस [लिंक](#) पर उपलब्ध है.

राहुल यदुका

कोसी नदी, जिसे अक्सर अपनी खतरनाक बाढ़ की वजह से "बिहार का शोक" कहा जाता है, हिमालय से निकलती है और नेपाल से होते हुए भारत के उत्तरी बिहार में प्रवेश करती है। निरंतर धारा परिवर्तन और भारी मात्रा में तलछट होने की वजह से यह भारत की सबसे ज्यादा बाढ़ लाने वाली नदियों में से एक है। सितंबर और अक्टूबर 2024 में, कई जगह तटबंध टूटने से उत्तरी बिहार के सुपौल समेत कई जिलों में भयानक बाढ़ आई। हालांकि, यह कोई अकेली घटना नहीं थी, क्योंकि इस इलाके में नदी आधारित समुदाय हर साल बाढ़ का सामना करते हैं। बाढ़ से होने वाले नुकसान, राज्य के हस्तक्षेप और लोगों की जीवटता को समझने के लिए, मैं बाढ़ प्रभावित गांवों के लोगों से बात करता रहा हूं। यह लेख इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे नदी के प्राकृतिक बर्ताव और बाढ़ नियंत्रण की गलत नीति ने बाढ़ को नदी किनारे रहने वाले लोगों की ज़िंदगी का एक विकृत हिस्सा बना दिया है, और कैसे नदी किनारे रहने वाले लोग इस विषम परिस्थिति में जीवन को संभव बनाते हैं।

नदी की अप्रत्याशित प्रकृति

कोसी नदी कभी एक स्थिर धारा में नहीं बहती। किसी साल यह कुछ गांवों को डुबो सकती है; वहीं दूसरे साल, यह अपना रास्ता बदल सकती है, जिससे हिमालय से भारी मात्रा में आने वाली गाद जमा हो सकती है। जनवरी 2025 में, मैंने सुपौल में पूर्वी कोसी तटबंध के पास कोसी की एक धारा को बहते हुए देखा। 9 महीने बाद, सितंबर 2025 तक, जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है, नदी की धारा लगभग सूख गई थी, जिससे रेत और गाद का एक बड़ा इलाका बन गया था। हिमालय से नीचे की ओर लाए गए लकड़ी के लट्टे किनारे पर जमा हो गए थे, जो नदी के बदलते मिजाज का सबूत है। यह अप्रत्याशितता इस इलाके के भूदृश्य और इसके लोगों की जीवन को आकर देती है।



चित्र 1: पूर्वी कोसी तटबंध के पास सूखती नदी और तलछट

चित्र 2 में छोटी-छोटी धाराओं, मिट्टी और पानी से पटा एक भूभाग दिखाई देता है। ये चित्र संयुक्त रूप से कोसी इलाके की पहचान दिखाती हैं: एक सतत परिवर्तनशील बाढ़ प्रभावित इलाका जहाँ नदी की बदलती धारा घरों, खेतों और आजीविका की नियंता है। नदी के बहाव की अनिश्चितता के कारण लोग मौसमी पलायन करते हैं, क्योंकि कई परिवार कटाव या बाढ़ की वजह से अपना घर और खेती की ज़मीन खो देते हैं और उन्हें कहीं और काम ढूँढने के लिए विवश होना पड़ता है।



चित्र 2: नदी द्वारा जमा किया गया तलछट



चित्र 3: एक छोटा बच्चा नदी में बहकर आयी लकड़ी के लट्टे इकट्ठा करता हुआ



चित्र 4: बाढ़ से उजड़ने के बाद सड़क किनारे खोल कर रखे गए घर के हिस्से

आपदा और संकट के बीच सामुदायिक जीवटता

बाढ़ से होने वाली तबाही के बावजूद, इस इलाके के लोग परिस्थितियों के साथ निरंतर समायोजन स्थापित करते रहते हैं। अपनी क्षेत्रकार्य के दौरान मैं एक 60 वर्षीय किसान से मिला जिनका परिवार पीढ़ियों से कोसी के किनारे रहता आ रहा है। उन्होंने अपने बेटे द्वारा नदी से इकट्ठा किए गए लट्टों की ओर इशारा करते हुए कहा, “नदी हमारी ज़मीन भले ले लेती है, लेकिन नदी बहुत कुछ देती भी है।” जीवन को संभव करने के ये छोटे-छोटे उपक्रम समुदाय के कौशल को दिखाते हैं।

चित्र 3 में एक लड़का पहाड़ों से बहकर आई लकड़ियाँ इकट्ठा करके कोसी में घुटनों तक पानी में खड़ा है। पहाड़ से उतरकर नदी जैसे-जैसे मैदानी इलाकों में धीमी होती जाती है, ये लकड़ियाँ नदी के पेट में बसे गावों के लिए ईंधन का एक महत्वपूर्ण श्रोत बन जाती हैं, जहाँ सड़कें कम हैं और खाना पकाने वाली गैस की डिलीवरी या तो भरोसेमंद नहीं है या अपनी कीमत के कारण लोगों की पहुँच से बाहर है। परिवार लकड़ी को जमा करके सुखाकर जलावन के लिए तैयार करते हैं, जो इस इलाके में ऊर्जा के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प है।

2024 की बाढ़ ने कई जगह पूरे गाँव को तबाह कर दिया, जिससे लोगों को अपने घर खोलने पड़े – घर जो अक्सर बांस और मिट्टी के बने होते हैं और जिन्हें आसानी से दोबारा खड़ा किया जा सकता है – और अपेक्षाकृत सुरक्षित जगह पर शरण लेनी पड़ी। चित्र 4 में सड़क के किनारे ये घर दिखाए गए हैं, उनकी फूस की छतें और लकड़ी के फ्रेम बाढ़ का सामना करने की क्षमता की निशानी हैं। 20 वर्षीय एक नौजवान ने मुझे बताया कि उसके परिवार ने पिछले दस साल में तीन बार अपना घर फिर से बनाया, हर बार बाढ़ की पहुँच से थोड़ी अधिक दूरी पर।

तटबंधों की विफलता

1950 और 1960 के दशक से, जब आज़ादी के बाद भारत के विकास में बड़े पैमाने पर नदियों पर बड़े संरचनात्मक हस्तक्षेपों को प्राथमिकता दी जा रही थी, तब बाढ़ को नियंत्रित करने, सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराने और पनबिजली के उत्पादन के लिए कोसी नदी के किनारे तटबंध और भारत-नेपाल सीमा के पास बैराज बनाए गए। हालांकि, तटबंधों ने गाढ़ को तटबंधों के बीच समेटकर, नदी के तल को ऊंचा करके, और जलनिकासी को अवरुद्ध करके, लंबे समय तक जलजमाव और बाढ़ की तीव्रता को बढ़ाकर परिस्थिति को और खराब कर दिया है, जिससे नदी किनारे के समुदाय पहले से अधिक असुरक्षित हो गए हैं।



चित्र 5: कटाव को रोकने के लिए नदी के किनारे चल रहा बाढ़ संघर्षात्मक कार्य

बाढ़ नियंत्रण के लिए तटबंधों को एक स्थायी समाधान के तौर पर सोचना मुश्किल है क्योंकि उन्हें निरंतर रखरखाव की ज़रूरत होती है क्योंकि उन्हें हमेशा नदी से खतरा रहता है। चित्र 5 में तटबंध के किनारे रेत की बोरियों का ढेर दिखाया गया है, जो नदी की धार से इसे बचाने का एक प्रयास है। तटबंधों को टूटने से बचाना बहुत ज़रूरी है क्योंकि तटबंधों ने कंट्रीसाइड यानी बाहर के गांव के इलाकों में, जो कथित तौर पर बाढ़ से सुरक्षित इलाका है, बड़े पैमाने पर ढाँचागत विकास को संभव बनाया है। अगर किसी भी परिस्थिति में तटबंध टूटते हैं, तो जान-माल का बहुत बड़ा नुकसान होगा। इसलिए, जल संसाधन विभाग इनको बचाने में प्रत्येक वर्ष भारी खर्च करता है। उपरोक्त प्रयत्नों के बाद भी तटबंधों का टूटना एक सच्चाई है—कोसी पर तटबंध बनने के बाद से अब तक 9 से ज़्यादा बार टूट चुके हैं। राज्य का ध्यान तटबंधों और बाहर के गावों की आबादी को बचाने पर रहता है, और अक्सर तटबंधों के अंदर नदी के किनारे रहने वाले लगभग दस लाख लोगों को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। इन समुदायों को बार-बार बाढ़ और कटाव का सामना करना पड़ता है, उनकी खेती की ज़मीन— जो आजीविका का मुख्य श्रोत है—कोसी निगल जाती है।

राज्य की विरोधाभासी भूमिका

कोसी बाढ़ के प्रति सरकार का रवैया एक अंतर्विरोध दिखाता है: लोगों का दमन और लोककल्याण के काम साथ-साथ होते हैं, जिससे समुदाय राज्य की उपेक्षा और 'दया' के बीच फंस जाते हैं। जब बाढ़ से लोगों की ज़मीन कट जाती है, तो कई परिवार अक्सर 'स्पर' पर – मिट्टी के बने ढांचे जो नदी की दिशा मोड़ने के लिए तटबंधों के लगभग लंबवत होते हैं – या तटबंधों पर ही डेरा डाल देते हैं। स्थानीय प्रशासन आमतौर पर ऐसे अतिक्रमण को बर्दाश्त कर लेते हैं, जो संभवतः यह संकेत देता है कि प्रशासन बाढ़ पीड़ितों की दयनीय स्थिति और इससे पैदा होने वाली नैतिक दायित्व समझता है। लेकिन चित्र 6 एक बहुत कम मिलने वाला और क्रूर क्षण दिखाता है - जिला प्रशासन स्पर पर विस्थापितों द्वारा रखे गए घरों को बुलडोज़र से गिरा रहे हैं, जिससे परिवारों के पास जाने के लिए कोई जगह नहीं बची है।



चित्र 6: जिला प्रशासन ने स्पर पर बने अस्थायी घरों को बुलडोज़र से गिरा दिया

इसके विपरीत, चित्र 7 में एक सरकारी सामुदायिक रसोई को दिखाया गया है, जो बाढ़ पीड़ितों को भोजन उपलब्ध कराने के लिए खोले जाते हैं। बिहार का आपदा प्रबंधन विभाग अपनी मानक सञ्चालन प्रक्रिया में ऐसे राहत प्रोटोकॉल के बारे में बताता है, जिसमें खाना, रहने की जगह और मेडिकल मदद के साथ-साथ दूसरी चीज़ों का वादा किया गया है। फिर भी, धरातल पर यह व्यवस्था पूरी तरह नहीं उतर पाती — सामुदायिक रसोई में राशन खत्म हो जाता है, और मदद बाढ़ पीड़ितों के सिर्फ एक हिस्से तक ही पहुँच पाती है, क्योंकि सरकारी मदद का एक बड़ा हिस्सा बिचौलिए और समबद्ध अधिकारी, नेता और ठेकेदार हड़प लेते हैं। लोकनीति और क्रियान्वयन के बीच का यह अंतर समुदाय की मुश्किलें और बढ़ाता है।

एक विकृत सामान्य स्थिति

कोसी की बाढ़, जिसे राज्य सरकार कभी एक आपदा मानती थी, अब समुदाय के रोज़मर्रा के जीवन का एक हिस्सा बन गई है, और इस इलाके के सामाजिक और आर्थिक ताने-बाने में शामिल हो गई है। राज्य के बाढ़ नियंत्रण के तरीके, खासकर तटबंध, न सिर्फ़ समुदायों की रक्षा करने में नाकाम रहे हैं, बल्कि उनकी स्थिति को और भी दयनीय बना दिया है। लोगों के बजाय तटबंधों की सुरक्षा को प्राथमिकता देकर, इन नीतियों ने खेती से होने वाले लाभ को कम कर दिया है, जिससे इस इलाके से बड़े पैमाने पर मौसमी पलायन शुरू हो गया है। मानक बाढ़ कैलेंडर का होना दिखाता है कि बाढ़ अब कोई आपदा नहीं रह गई है, बल्कि एक नियति है, जो अब एक विनाशकारी चक्र के रूप में सामुदायिक जीवन में समाया चुका है।

इस सामान्यीकरण की एक कीमत है। कोसी के प्राकृतिक व्यवहार और नदी किनारे रहने वाले समुदायों के लोकज्ञान और 'बाढ़ सहजीवन' की संस्कृति को नज़रअंदाज़ करके, राज्य ने लोगों और उनकी पारिस्थितिकी के बीच के संतुलन को बिगाड़ दिया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि यह इलाका पर्यावरणीय और सामाजिक, दोनों तरह से गरीब हो गया है।



चित्र 7: सुपौल में बाढ़ पीड़ितों के लिए एक सामुदायिक रसोई

आगे का रास्ता

कोसी की बाढ़ से ज़रूरी सवाल उठते हैं: क्या बाढ़ नियंत्रण में तटबंधों के बजाय लोगों को प्राथमिकता दी जा सकती है? क्या लोकनीति में पारंपरिक ज्ञान को शामिल करके समुदाय की स्थिति को सुधारा जा सकता है? नीतिनिर्माण में नदी के किनारे रहने वाले समुदायों को शामिल करने से तबाही और विस्थापन का सिलसिला टूट सकता है, और एक ऐसा रास्ता निकल सकता है जो नदी और उसके लोगों दोनों का सम्मान करता है।

यह लेख 20 फ़रवरी 2026 को 'सबलोग' पत्रिका में भी प्रकाशित हो चुका है, जिसे इस [लिंक](#) पर पढ़ा जा सकता है।

(लेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी विचार हैं और वो किसी भी संस्था से उनके संबंधों को प्रतिबिंबित नहीं करते।)



Dr Rahul Yaduka
rahul@watcon.org

डॉ. राहुल यादुका WATCON प्रोजेक्ट में एक पोस्ट डॉक्टोरल शोधकर्ता हैं। उन्होंने अपनी पीएचडी बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली से स्कूल ऑफ़ डेवलपमेंट स्टडीज़ से की है। इससे पहले उन्होंने आई.आई.टी बॉम्बे से सिविल इंजीनियरिंग में बी.टेक. और दिल्ली विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम.ए. किया है। डिज़ास्टर स्टडीज़, डेवलपमेंट स्टडीज़, पलायन, जलवायु परिवर्तन, जनप्रतिरोध आदि उनकी रूचि के शोध क्षेत्र हैं। उनका सम्बन्ध बिहार में बाढ़, शहरी गरीबी, पलायन, आदि पर काम करने वाले सामाजिक संगठनों से भी रहा है।

The project Addressing the Multi-scalar Dimensions of Sectoral Water Conflicts Through the Lens of Water Security: Lessons from South Asia (WATCON) is hosted in the Law, Environment and Development Centre (LEDC) at SOAS. It was assessed by the European Research Council (ERC) under the European Union's Horizon 2020 research and innovation programme. It has received funding from UKRI under the UKRI Frontier Research grants scheme.

For additional information, please refer to www.watcon.org or send a message to info@watcon.org



SOAS
University of London



**UK Research
and Innovation**